इकाई 6 भारत में अंग्रेजी राज का सुदृढ़ होना: सीमान्त और विदेश नीति

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 अंतर्राष्ट्रीय स्थिति
6.2.1 भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटेन की सर्वोच्चता
6.2.2 चीन का पतन
6.2.3 रूस से खतरा
6.2.4 अफगानिस्तान
6.2.5 द्वितीय अफगान युद्ध
6.3 उत्तरपश्चिमी सीमान्त नीति
6.4 ईरान तथा ईरान की खाड़ी
6.5 तिब्बत
6.6 नेपाल
6.7 सिक्किम
6.8 भूटान
6.9 उत्तरपूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा)
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

ब्रिटिश सरकार ने शासन को दृढ़ बनाने के लिए जो नीति अपनाई उसके अंतर्गत उसने भारत में बाकायदा प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना की। साथ ही उसने नये जीते हुए प्रदेशों की सीमाओं को सुरक्षित रखने में भी थोड़ी ढील नहीं की। इसे ही ब्रिटिश सरकार की विदेश एवं सीमांत नीति कहा जाता है। इसे प्रायः साम्राज्यवादी नीति का नाम भी दिया जाता है क्योंकि दुनियाभर में ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा करने के लिए ही इस नीति का निर्माण हुआ था। इस इकाई में हम इसी नीति के तत्वों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान सकेंगे :

- कि जिस काल का अध्ययन हम कर रहे हैं उस समय अंतर्राष्ट्रीय स्थिति कैसी थी।
- अंग्रेजों ने किस प्रकार इस भारतीय महाद्वीप में अपनी सर्वोच्चता स्थापित की।
- कि किस प्रकार उन्होंने मध्य एशिया में रूस के खतरे का सामना किया।
- कि कैसे ब्रिटिश सरकार उत्तर पश्चिम भाग को अपने नियंत्रण में लाई।
- यह जान सकेंगे कि तिब्बत, नेपाल, भूटान और सिक्किम के साथ भारत की ब्रिटिश सरकार के कैसे संबंध थे।
- कि पश्चिम खाड़ी देशों तथा उत्तरपूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा) के संबंध में ब्रिटिश सरकार की नीति क्या थी।

6.1 प्रस्तावना

1918 तक अंग्रेजों ने लगभग संपूर्ण भारत को जीत लिया था। केवल पंजाब और सिंध बचे हुए थे और शीघ्र ही इनकी भी बारी आने वाली थी। भारत में साम्राज्य की स्थापना कर लेने के बाद अंग्रेजों ने दोहरी नीति अपनाई। इसका उद्देश्य एक ओर उचित प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करना था तो दूसरी ओर हाल ही में जीते गए प्रदेशों की सीमाओं को सुरक्षित करना था। सीमाओं को सुरक्षित करने संबंधी नीति को ही सीमांत एवं विदेश नीति कहा जाता है। इसमें भारतीय रियासतों के साथ अंग्रेज सरकार के संबंधों की चर्चा नहीं है यद्यपि यह विषय भी विदेश विभाग के अंतर्गत ही आता था। भारत में अंग्रेजी राज की सीमाओं की सुरक्षा से संबंधित नीति को "साम्राज्यवादी नीति" भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इस नीति का निर्धारण करते समय ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को ध्यान में रखा गया। अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या 1947 से पहले भारत की अपनी कोई स्वतंत्र विदेश नीति थी? कुछ हद तक यह कहना उचित होगा कि यह नीति स्वतंत्र थी। इस बात के समर्थन में हमारे पास निम्नलिखित तर्क हैं:

i) भारत में अंग्रेजी राज के दृढ़ होते ही अफगानिस्तान और ईरान से होने वाले आक्रमण तथा सीमांत कबीलों की लूटपाट बंद हो गई। ये आक्रमण और लूटपाट लंबे अर्से से चले आ रहे थे।

ii) ब्रिटिश साम्राज्य के एक बड़े एवं महत्वपूर्ण घटक होने के नाते अंग्रेजी सरकार की विदेश नीति के निर्धारण में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

iii) चूंकि इंग्लैंड और भारत के बीच की दूरी अधिक थी अतः भारत की अंग्रेजी सरकार को अपने विवेक से कार्य करने का, तथा भारत की विदेश नीति निर्धारण में कुछ सीमा तक स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार था।

iv) इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी हित भारत के हितों से मेल खाते थे। ये क्षेत्र रूस, ईरान तथा चीन से संबंधित थे। इससे भारत की विदेश नीति के विकास को बढ़ावा मिला।

किंतु इन तर्कों के बावजूद हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आखिर भारत था तो इंग्लैंड का उपनिवेश ही। उपनिवेशवादी अंग्रेजी सरकार की राजनीतिक गतिविधियों को हम भारत की विदेश नीति भले ही कह लें इनका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों का पोषण करना था। यहाँ हम आपका ध्यान एक समस्या की ओर भी दिलाना चाहेंगे। यह समस्या है उस तिथि के निर्धारण की जब से कि कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति का आरंभ हुआ। आमतौर पर माना जाता है कि भारत की विदेश नीति की शुरुआत तब हुई जब कंपनी सरकार ने देशी राज्यों के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित किये। इन रियासतों को इस बात के लिए बाध्य किया गया कि वे अपने विदेश नीति संबंधी मामले कंपनी सरकार के नियंत्रण में सौंप दें। भारत की विदेश नीति के आरंभ की दूसरी तिथि 1818 मानी जाती है। तभी से भारत में अंग्रेजी राज्य के सुदृढ़ होने का युग आरंभ हुआ किंतु अंतर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से भारत की विदेश नीति का समय 1858-59 माना जाएगा जब भारत के शासन का अधिकार कंपनी के हाथों से निकल कर ब्रिटेन की महारानी के हाथों में आया। कहा जा सकता है कि तभी से भारत की स्वतंत्र विदेश नीति का आरंभ हुआ। किंतु नीति की यह स्वतंत्रता ऊपर से देखने भर को थी, इसे वास्तविक स्वतंत्र विदेश नीति नहीं कहा जा सकता।

6.2 अंतर्राष्ट्रीय स्थिति

यदि हम अपने अध्ययन की निश्चित अवधि में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति पर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है वह यह कि यह काल ब्रिटिश सरकार के लिए अनुकूल था। जहाँ तक तटीय क्षेत्रों तथा नौ सैनिक अड्डों की सुरक्षा का प्रश्न था ब्रिटेन की स्थिति बड़ी सुदृढ़ थी क्योंकि वह अपने पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच प्रतिद्वंद्वियों पर पहले ही विजय प्राप्त कर चुका था। जहाँ तक भू-सीमा को सुरक्षित करने का प्रश्न था, भारत की सैन्य नीति तथा कूट नीति में रूस तथा चीन उन्नीसवीं शती में महत्वपूर्ण बने रहे। इस व्यवस्था को ठीक से समझने के लिए हम अपने विषय को तीन भागों में बाँट कर अध्ययन करेंगे।

6.2.1 भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटेन की सर्वोच्चता

भारत को जीतने के सिलसिले में ब्रिटेन हालैंड तथा पुर्तगाल को पहले ही हरा चुका था। अब फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के बीच अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए विश्व स्तर पर संघर्ष छिड़ गया। 1740 से लेकर 1800 तक इन दो शक्तियों का संघर्ष दक्षिणी भारत तक ही सीमित रहा। यद्यपि सप्तवर्षीय युद्ध में फ्रांसीसी अंग्रेजों से हार गए थे फिर भी फ्रांस में नेपोलियन के तथा मैसूर में हैदरअली और उसके बेटे टीपू सुल्तान के उदय के कारण अंग्रेजों को फ्रांसीसी शक्ति से बराबर खतरा बना हुआ था। नेपोलियन के मिश्र अभियान एवं उसके परिणामस्वरूप होने वाले नील नदी के युद्ध तथा टीपू सुल्तान से फ्रांस के संबंधों में अंग्रेजों को अपने लिए खतरा दिखाई देता था। 1788 में मिश्र में नेपोलियन की तथा भारत में टीपू की पराजय के साथ ही अंग्रेजों के लिए दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों का खतरा समाप्त हो गया।

1807 के बाद संघर्ष का स्थान बदल कर उत्तर पश्चिम हो गया। समुद्री युद्धों में हारने के बाद अब नेपोलियन भूमि मार्ग से भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था। भारत की ब्रिटिश सरकार को भय हुआ कि कहीं फ्रांस, ईरान और रूस मिलकर भारत पर धावा न बोल दें। इस खतरे को टालने के लिए तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड मिंटो ने बाध्य होकर चार राजनीतिक आयोग भेजे। इन आयोगों के अंतर्गत क्रमशः मैलकॉम को तेहरान, एलफिंस्टन को काबूल, सीटन को सिंध और चार्ल्स मेटकाफ को लाहौर भेजा गया। इन कूटनीतिक प्रयासों के परिणामस्वरूप इन राज्यों की सरकारों के साथ ब्रिटिश सरकार की मैत्रीपूर्ण संधियां हुई जिनका उद्देश्य फ्रांस के खतरे का सामना करना था। ये प्रयास भारत की ब्रिटिश सरकार की एक स्वतंत्र विदेश नीति स्थापित करने की दिशा में प्रथम कदम कह सकते हैं। फ्रांस का खतरा तो नेपोलियन की पराजय के साथ ही खत्म हो गया किंतु इसने रूस का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि उन्नीसवीं शती में गोआ में पुर्तगालियों तथा पांडिचेरी में फ्रांसिसियों की नगण्य उपस्थिति अंग्रेजों के लिए कोई गंभीर चिंता का विषय नहीं रही। किंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में फ्रांसीसियों ने विद्रोह भड़काने की नीयत से बर्मा में कांसुलेट स्थापित करने का प्रयास किया। फ्रांसीसियों के ओमान में नौसैनिक अड्डा की स्थापना के प्रयत्नों तथा जर्मनी के बर्लिन-बगदाद रेलवे लाइन बिछाने की योजना में भी अंग्रेजों को अपने लिए खतरा महसूस हुआ।

6.2.2 चीन का पतन

चीन के साथ भारत के पुराने संबंध थे तथा वहाँ से नियमित रूप से यात्री भी भारत आते रहते थे किंतु भारत को कभी चीन से आक्रमण का खतरा नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि दोनों देशों के बीच हिमालय बाधा बनकर खड़ा था। यद्यपि

अठारहवीं सदी में चीन ने तिब्बत तथा एशिया के पूर्वी भागों पर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी, तथा भारत पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा था। किंतु उन्नीसवीं शती में चीन की शक्ति और प्रतिष्ठा दोनों का ही तेजी से पतन आरंभ हो गया। यह वह समय था जब कुछ यूरोपीय ताकतें चीन में अपना व्यापार फैलाने के लिए प्रयत्नशील थीं। अतः चीन का सारा ध्यान इन शक्तियों को रोकने में लगा रहा और वह अपनी उत्तरपूर्वी सीमाओं की ओर विशेष ध्यान न दे सका।

6.2.3 रूस से खतरे की आशंका

उन्नीसवीं शती के मध्य में ब्रिटेन के विदेश सचिव लार्ड पालमेंस्तन ने सर्वप्रथम रूस से खतरे का अनुमान लगाया था लेकिन प्रथम बार जब भारत के गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक ने इसकी चर्चा की तो यह वास्तविक खतरा प्रकाश में आया। अंग्रेजों ने भूमध्य सागर से रूस का मार्ग रोक रखा था अतः वह भूमि मार्ग से अफगानिस्तान के उत्तर पश्चिम सीमांत की ओर तेजी से बढ़ने लगा। भारत में अंग्रेजों की पहुँच अभी प्राकृतिक सीमांत तक नहीं हुई थी क्योंकि पंजाब और सिंध दोनों ही स्वतंत्र राज्य थे तथा ईरान कमजोर होते हुए भी नादिरशाही युग की अपनी पुरानी शान को फिर पुर्नजीवित करने की आकांक्षा रखता था। 1834 में अपने दादा की मृत्यु के बाद मिर्जा मोहम्मद ईरान के सिंहासन पर बैठा। रूस के प्रति उसका दोस्ताना रवैया था। ऐसा लगता था कि रूस समीपस्थ क्षेत्र तथा मध्य एशिया (जिसे पश्चिमी एशिया कहा जाता है) पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने को कटिबद्ध था। इसे अफगानिस्तान के लिए खतरा समझा गया।

6.2.4 अफगानिस्तान

अंग्रेज अफगानिस्तान को बचाना चाहते थे क्योंकि वह उनका व्यापार केंद्र होने के साथ उनके लिए मध्य एशिया का एकमात्र प्रवेशद्वार भी था। इस प्रकार मध्य एशिया में दो विस्तारवादी साम्राज्यों के बीच संघर्ष की तैयारी हो गई। रूस ने हेरात पर कब्जा कर लिया था तथा काबुल का अमीर दोस्त मोहम्मद अंग्रेजों से प्रसन्न नहीं था। साथ ही भारत के अंग्रेज प्रशासक अत्याधिक चिंतित थे और इन सब बातों के परिणामस्वरूप अफगान युद्ध (1838-42) हुआ जो अंग्रेजों के लिए अनर्थकारी सिद्ध हुआ। इस युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम तो यह हुआ कि 1843 में सिंध और 1849 में पंजाब अफगानिस्तान तथा ब्रिटिश भारत की सीमाएं मिल गई।

पहले अफगान युद्ध का परिणाम यह भी हुआ कि दोस्त मोहम्मद पुनः काबुल की गद्दी पर बैठ गया। किंतु यह बात अंग्रेजों के लिए अच्छी सिद्ध हुई क्योंकि 1854 में रूस के साथ इंग्लैंड के क्रीमियन युद्ध (Crimean War) तथा 1857 के भारतीय विद्रोह के समय दोस्त मोहम्मद ने पूर्ण तटस्थता की नीति अपनाई। क्रीमियन युद्ध (Crimean War) के तुरंत बाद रूसी मध्य एशिया में आगे बढ़ने लगे। 1864 में जारी किए अपने ज्ञापन में राजकुमार गार्चाडौफ ने रूस के इरादों को स्पष्ट करते हुए यह लिखा कि रूस की अफगानिस्तान की ओर बढ़ने के पीछे वही साम्राज्यवादी प्रेरणा काम कर रही है जो अंग्रेजों के हिन्दुस्तान और पंजाब के मैदानी क्षेत्रों में आगे बढ़ने तथा पहाड़ों तक पहुंचने के पीछे थी। इसी लक्ष्य का अनुसरण करते हुए रूस ने अपनी सीमाएँ 1864 में बुखारा, 1868 में समरकंद तथा 1873 में खीवा तक बढ़ा लीं। 1867 में रूसी तुर्कीस्तान का एक प्रदेश बनाया गया तथा बुखारा रूस का अधीनस्थ राज्य बन कर रह गया। 1873 में खीवा रूस के नियंत्रण में आ गया। अपनी इस विस्तारवादी नीति के पक्ष में रूस ने कहा कि उसे अंग्रेजों से उनकी महाद्वीपीय संधियों के जरिये खतरा हो सकता है जैसा कि क्रीमियन युद्ध (Crimean War) के समय हुआ था। रूस का कहना था कि उसने मध्य एशिया में अपनी सैन्य शक्ति इसलिए मजबूत की ताकि वह भारत में हस्तक्षेप का डर दिखाकर इंग्लैंड को काबू में रख सके।

रूस के इस रवैये की अंग्रेजों पर दोहरी प्रतिक्रिया हुई :

i) एक योजना तो यह थी कि अंग्रेजी फौजें मध्य एशिया में आगे बढ़कर महत्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा कर लें तथा अफगानिस्तान में नियंत्रण स्थापित कर लें। इसे "अग्रणी नीति" कहा जाता था और आमतौर पर कंज़र्वेटिव दल के सदस्य इस नीति के समर्थक थे।

ii) दूसरी योजना को "अधिकारपूर्ण निष्क्रियता" (Masterly Inactivity) अथवा "स्थिर" नीति (Stationary School) कहा गया। इस नीति के समर्थक प्रायः उदारवादी थे। उनका विचार था कि अफगानिस्तान के संबंध में सतर्कता बरतते हुये हस्तक्षेप न करने की नीति और रूस के साथ किसी राजनीतिक समझौते पर पहुँचने का प्रयास किया जाए।

यह तय हुआ कि यदि रूस आक्रमण करे तो उसका सामना भारतीय सीमांत पर ही किया जाय क्योंकि आगे बढ़कर अफगानिस्तान पर कब्जा करना खतरे से खाली नहीं था। यह नीति 1863-75 की अवधि में अपनाई गयी। इसके अतिरिक्त रूस के सैनिक अड्डे दूर होने के कारण भी भारतीय सीमांत पर युद्ध होना अंग्रेजों के पक्ष में होता। इसके विपरीत अग्रणी नीति के समर्थकों का मत था कि अंग्रेजों को आगे बढ़कर रूसी आक्रमण का सामना करना चाहिए ताकि भारत की असंतुष्ट जनता पर इसके खतरनाक प्रभाव न पड़े। इसका अर्थ यह था कि अंग्रेजी सेनाएँ आगे बढ़कर अफगानिस्तान पर नियंत्रण स्थापित करें तथा रूसी आक्रमण को हिंदुकुश सीमांत पर ही रोक दें।

6.2.5 द्वितीय अफगान युद्ध

1874 के चुनावों में लिबरल दल हार गया। परिणामस्वरूप गलैटस्टन की सरकार गिर गई तथा कंज़र्वेटिव दल की नई सरकार बनी। डिजरायली का अग्रणी नीति में दृढ़ विश्वास था। उसने धीरे-धीरे भारत में ब्रिटिश सरकार को दूसरी बार अफगान

युद्ध के लिए बाध्य कर दिया। द्वितीय अफगान युद्ध के परिणाम पहले अफगान युद्ध के परिणामों से बहुत भिन्न नहीं थे। हिन्दूकुश के दूसरी तरफ रूस बेरोकटोक बढ़ा चला आ रहा था। मेर्वा (Merv) पर रूस के अधिकार से लंदन तथा कलकत्ता में अंग्रेजों के बीच खलबली मच गई। एव वर्ष पश्चात् अंग्रेजों ने पंजाब पर नियंत्रण स्थापित कर लिया और 1873 में पामीर के पठार पर भी अधिकार कर लिया। पामीर का पठार सीधा काश्मीर से जुड़ा हुआ था।

1890 तक यूरोप के राजनीतिक संबंध नया रूप धारण करने लगे। बिस्मार्क के पतन के बाद जर्मनी ने रूस से किनारा कर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि शक्तियों का द्वि ध्रुवीकरण हो गया। इस प्रक्रिया में इंग्लैंड के पुराने शत्रु रूस और फ्रांस एक दूसरे के करीब आ गए, जिससे आगे चलकर मित्र राष्ट्रों का त्रिगुट (Tripple Entente) बना। इस प्रकार विभिन्न महाद्वीपों में उनके विरोधी हितों से संबंधित राजनीतिक मतभेदों का समाधान हो गया।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित कथनों में कौन से सही हैं और कौन से गलत? (√) या (X) का चिह्न लगाइए।
   i) भारत की उपनिवेशवादी सरकार की विदेश नीति का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकतर हितों का पोषण करना था।
   ii) अंग्रेज भारत में अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के प्रति उदासीन थे।
   iii) अन्य यूरोपीय शक्तियों की तुलना में अंग्रेज भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने में असफल रहे।
   iv) मध्य एशिया में रूस के बढ़ते चले आने से ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को खतरा प्रतीत हुआ।

2 उन दो नीतियों का उल्लेख कीजिए जिन्हें अंग्रेजों ने मध्य एशिया में रूस की चाल को विफल करने के लिए अपनाया:
   i) ....
   ii) ....

6.3 उत्तर पश्चिमी सीमांत नीति

सिंध और पंजाब के अधिग्रहण से अंग्रेज सीधे पहाड़ी कबीलों के संपर्क में आ गए। पंजाब और सिंध एक प्रकार से अनौपचारिक सीमाएँ थे जिनके परे पहाड़ों का विशाल जाल फैला हुआ था। इनमें गहरी घुमावदार घाटियाँ थीं। इसके उत्तरी भाग में पठान रहते थे जिसका प्रशासन पंजाब प्रदेश के हाथ में था जबकि इसका पश्चिमी भाग जिसमें बलूची रहते थे और जो सिंध सीमांत कहलाता था, बंबई के अंतर्गत आता था। किंतु पहाड़ी कबीले एक प्रकार से स्वतंत्र थे। वे नाममात्र के लिए काबुल के अमीर के अधीन थे। इन कबीलों के लोग सूखे और कठिन भूभाग पर रहते थे, जीवन के बहुत कम संसाधन इनके पास थे, किंतु ये अत्यंत सादगी, कष्टसहिष्णु तथा सैन्य कुशल थे। ये लोग प्रायः ब्रिटिश भारत के सीमांत प्रदेशों में घुसकर लूटपाट मचाया करते थे। इन उपद्रवी कबीलाइयों ने ऐसा उत्पात मचा रखा था कि भारत की सुरक्षा के लिए अनिवार्य, स्थिर तथा शांतिपूर्ण सीमांत की बात सोचना कठिन था। चूंकि उत्तर पश्चिमी सीमांत दो भिन्न प्रांतीय सरकारों सिंध और बम्बई के अधीन था अतः सीमांत के प्रशासन एवं कबीलों के साथ संबंध बनाने के भी दो भिन्न तरीके विकसित हुए। सिंध के अंतर्गत आने वाले सीमांत प्रदेश में जहाँ घाटियाँ पंजाब की तुलना में चौड़ी थीं और जहाँ कृषि योग्य भूमि कबायली इलाकों से दूर थी, बंद सीमांत व्यवस्था को अपनाया गया इस व्यवस्था के अंतर्गत सीमांत पर पहरा होता था तथा कोई भी काबायली बिना पास के ब्रिटिश सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता था। पंजाब सीमांत पर "खुले सीमांत" (Open Frontier) की व्यवस्था थी। तंग दर्रों की सुरक्षा के लिए किले बनवाए गए तथा तोपखानों की व्यवस्था की गई। कबीलाइयों को लूटमार से विमुख करने के लिए सरकार उन्हें ब्रिटिश भारत में व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित भी करती थी।

आरंभ में लार्ड डलहौजी की नीति भी सीमांत पर शांति कायम रखने में बहुत सफल रही। उसकी नीति को तीन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है — जुर्माना, नाकेबंदी और अभियान। लूटपाट और हत्या के अपराध में जुर्माना लगाया जाता था, किसी भी संकट को एक निश्चित क्षेत्र में सीमित रखने के लिए उसकी नाकेबंदी कर दी जाती थी। उन कबीलाइयों के विरूद्ध अभियान भी चलाये जाते थे जो आम लूटपाट और मारधाड़ करते थे। इस प्रकार के दंडित करने वाले अभियानों तथा नाकाबंदी करने को "मारो और घेरो नीति" (butcher and bolt policy) का नाम दिया गया तथा बदले की बर्बर नीति कह कर इसकी आलोचना की गयी। 1849 और 1893 के बीच बयालीस ऐसे अभियान चलाये गये जिनमें अंग्रेजों के पक्ष के 2173 लोग मारे गए। इन अभियानों में मृतकों की दर को देखते हुए ब्रिटिश अधिकारी कबीलाइ इलाकों में जाने से हतोत्साहित हुए। अतः सीमांत पर अपना नियंत्रण मजबूत करने तथा स्थानीय लोगों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए सरकार ने मेलों-बाजारों को प्रोत्साहन देना आरंभ किया जिससे आंतरिक व्यापार में वृद्धि हुई। सरकार ने अस्पताल तथा औषधालय खोलकर निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था भी की। रोजगार के अवसर भी उपलब्ध कराए गए तथा कबायलियों को सेना तथा अर्द्धसैनिक बलों में भरती होने के लिए प्रोत्साहित किया गया। उस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण सुदृढ़ करने के लिए सरकार ने सड़कों और रेल मार्गों का निर्माण किया। अंत में सरकार ने तजारा, पेशावर, फोहाट, बन्नू, डेरा इस्माइलखान तथा डेरा गाजीखान के सीमांत ज़िलों को संगठित किया। इन सब प्रयासों द्वारा ब्रिटिश सरकार ने सीमांत क्षेत्रों में अपनी स्थिति मजबूत की और भारत की प्रथम सुरक्षा पंक्ति की स्थापना की।

पंजाब और सिंध की सीमांत व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सिंध की व्यवस्था को अधिक सफलता मिली। कम से कम 1890 तक तो यही स्थिति बनी रही। इस सफलता का कारण इस व्यवस्था का श्रेष्ठ होना नहीं अपितु दोनों प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति का भिन्न होना था। इसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी थे। पठानों की एक परिषद् होती थी जिसे "ज़िरगा" कहा जाता था। इसमें कबीले के लगभग सभी सदस्य होते थे। बलूचिस्तान में गिने-चुने नेता थे जिनसे निपटना कठिन नहीं था। पठान मुखियों के साथ किए गए समझौते का वही महत्व नहीं होता था जो बलूच नेताओं के साथ किए गए समझौतों का होता था। एक दूसरी बात जो सिंध में प्रभावशाली सिद्ध हुई वह थी 1877 में बलूचिस्तान में ऐजेंट के पद पर मेजर सेंडीमन की नियुक्ति। उसके मैत्रीपूर्ण और समझौते की नीति अंग्रेजों के लिए बड़ी सफल सिद्ध हुई। किन्तु सेंडीमन के यही तरीके पठान कबीलों में बिलकुल कारगर नहीं हुए क्योंकि पठान नेताओं का अपने अनुयायियों पर वैसा प्रभाव नहीं था जैसा कि बलूचिस्तान के नेताओं का था।

इ्यूरेन्ड रेखा (The Durand Line) 1893

उत्तरी-पश्चिमी सीमांत पर शांति की स्थापना बड़ी विकट समस्या थी क्योंकि काबुल का अमीर अक्सर कबीलाइयों से मिल जाता था। लार्ड लैंसडाउन की सिफारिश पर सर मोर्टिमर ड्यूरेंड को काबुल के अमीर के पास बात-चीत करने के लिए भेजा गया ताकि सीमा के संबंध में किसी समझौते तक पहुँचा जा सके और फिर सिंधु की सीमा पर कबीलों की समस्या काबुल की जिम्मेदारी रहे। 2 नवम्बर 1893 को जो समझौता हुआ वह इस प्रकार था:

i) वाखान, अस्मार, काफिरिस्तान, मोहमंड तथा वजरीस्तान का कुछ इलाका काबुल के अमीर के अधीन बना रहेगा;

ii) स्वात बाजौर, दरवान कुर्रम घाटी, छागे तथा नया चमन अंग्रेजों के अधीन बने रहेंगे। गोमाल दर्रे के कबायली इलाके भी अंग्रेजों को दे दिए गए।

इससे कबीलाइ इलाके अफगानों और अंग्रेजों के बीच बँट गए। यह भी तय हुआ कि सीमांत का सर्वेक्षण और सीमांकन करने के लिए एक आयोग बिठाया जाएगा। समझौते के अनुसार सीमांत का सर्वेक्षण और सीमांकन किया गया। मोर्टिमर ड्यूरेन्ड की देख-रेख में इस कार्य को होने में दो वर्ष का समय लगा क्योंकि इससे कबीलाइयों के मन में संदेह हो गया और वे बार-बार इसमें बाधा डालते थे। नई सीमा रेखा को ड्यूरेन्ड रेखा का नाम दिया गया। एक बार इस रेखा के बन जाने पर सीमा के दोनों ओर के प्रदेशों का स्पष्ट बंटवारा हो गया तथा अपने-अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के उत्तरदायित्व का भी बँटवारा हो गया। यह सीमा रेखा हिन्दुकुश के उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर तेगदुमरा से मांडा दर्रे तक थी जो काफिरिस्तान को काबुल तक अलग करती थी।

ड्यूरेंड समझौते के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को वाजिरी, अफ्रीदी और बाजोरी कबीलों को शासित करने का अधिकार प्राप्त हो गया। कबीलाइयों को पहले से ही अंग्रेजों पर शक था। अतः इस समझौते का परिणाम यह हुआ कि वे बार-बार अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने लगे। इन विद्रोहों को दबाने के लिए अंग्रेजों ने सशस्त्र टुकड़ियाँ इन इलाकों में भेजी। इस समझौते के कारण अंग्रेज उस क्षेत्र में संचार के साधन विकसित करने कर वसूलने विशेषकर नमक कर, तथा उनके रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करने में सफल हुए। काबुल का अमीर भी इस बात से नाखुश था कि इन कबीलों पर उसका आधिपत्य नहीं रह गया था।

1899 में लार्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल बना। उसका कार्यकाल 1905 तक रहा। वह इस इलाके से तथा यहाँ के लोगों से भली प्रकार परिचित था। उसने प्रस्ताव किया कि यहाँ से ब्रिटिश भारत की नियमित सैन्य टुकड़ियों को हटा लिया जाए तथा उनके स्थान पर कबीलाई रंगरूटों के दस्तों को रखा जाए। इससे दो लाभ थे --- एक तो भारत में ब्रिटिश सरकार को कबीलाइयों लोगों का विश्वास प्राप्त हो जाता जिससे कानून और व्यवस्था की जिम्मेदारी बँट जाती दूसरे यह व्यवस्था कम खर्चीली थी। उसने 26 अप्रैल 1902 को लाहौर में एक दरबार भी लगाया ताकि सीमांत कबीलों के मुखियाओं के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित किये जा सकें। इतना ही नहीं कुशल प्रशासन तथा प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसने एक नये प्रांत का निर्माण किया जिसे उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत (North Western Frontier Province) कहा जाता था। इस प्रकार लार्ड कर्जन सीमांत क्षेत्र में दीर्घ समय तक शांति स्थापित करने में सफल हुआ।

6.4 ईरान तथा ईरान की खाड़ी (Persia and Persian)

ईरान, अरब सागर के तट तथा ईरान की खाड़ी क्षेत्र अंग्रेजों के लिए सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थे क्योंकि भारत पहुँचने के भूमि एवं समुद्री मार्ग इसी क्षेत्र में पड़ते थे। भूमि मार्ग से घुसपैठ करने वालों को अंग्रेजों ने कई बार रोका था। इस मार्ग पर पहले उन्होंने फ्रांसीसी सेनाओं तथा बाद में रूसियों को रोका। ईरान द्वारा हेरात पर कब्जा करने के प्रयास को भी अंग्रेजों ने विफल कर दिया। द्वितीय अफगान युद्ध के बाद 1907 की संधि के फलस्वरूप ईरान ब्रिटिश क्षेत्र तथा रूसी क्षेत्र में बँट गया। जब इस क्षेत्र में बढ़ते हुए जर्मन प्रयास को रोकने के प्रयत्न किए जा रहे थे, 1917 में रूस में विद्रोह फैल गया और अंग्रेजों को पूरे ईरान पर अधिकार जमाने का मौका मिल गया। 1921 में रजा खान के सैनिक विद्रोह के बाद ईरान फिर से स्वतंत्र हो गया। अपने आपको बड़ी शक्तियों के हस्तक्षेप से बचाने के लिए ईरान ने अपने पड़ोसी देशों, तुर्की, ईराक तथा अफगानिस्तान के साथ एक समझौता किया जो पूर्वी-समझौते (Eastern Pact) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर भी यह प्रदेश आज तक बड़ी शक्तियों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के देशों में निरंतर युद्ध छिड़ा रहता है।

समुद्री मार्ग पर, विशेषकर ईरान की खाड़ी में सामरिक महत्व के समुद्री एवं समुद्र तटीय स्थानों पर कब्जा करके अंग्रेजों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। ये क्षेत्र या तो ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिए गए या संधियों द्वारा उससे संबद्ध कर दिए गए। इन स्थानों में प्रमुख थे मारीशस, जंजीबार, मस्कट, बहराइन, कुवैत, ओमान इत्यादि। लार्ड लैंसडाउन भारत का पहला वाइसराय था (1884-94) जिसने ईरान की खाड़ी का दौरा किया। उसके दस वर्ष पश्चात् अर्थात् 1903 में लार्ड कर्जन ने खाड़ी देशों के शेखों को अपने जहाज पर एकत्रित किया तथा उस क्षेत्र पर ब्रिटिश प्रभुता की घोषणा कर दी। इसी नीति के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार ने ओमान और कुवैत जैसे समुद्र-तटीय देशों को यह वचन देने के लिए बाध्य किया कि वे फ्रांस एवं जर्मनी जैसे अंग्रेजों के यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों को कोई सुविधा प्रदान नहीं करेंगे। स्वेज नहर के खुल जाने के बाद यह मार्ग ब्रिटिश व्यापार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। समुद्र तटीय राज्यों के साथ की गई संधियों के फलस्वरूप ब्रिटिश व्यापार पहले ही सुरक्षित हो चुका था। इतना ही नहीं, जब इस क्षेत्र में खनिज तेल निकला तो सबसे पहले अंग्रेजों ने ही तेल उद्योग तथा व्यापार पर अपना नियंत्रण स्थापित किया।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित में कौन से कथन सही (√) या गलत (×) हैं :

   i) सीमा प्रदेश को नियंत्रण में रखने के लिए लार्ड डलहौजी ने नर्म नीति अपनाई। ( )

   ii) पठान कबीलों के मुखियाओं की तुलना में बलूच मुखियाओं से बात-चीत करना अंग्रेजों को अधिक सरल प्रतीत हुआ। ( )

   iii) सबसे पहले अंग्रेजों ने ही खनिज तेल के उद्योग तथा व्यापार पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। ( )

   iv) सामरिक दृष्टि से ईरान की खाड़ी अंग्रेजों के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी। ( )

2 लगभग दस पंक्तियों में लिखिए कि अंग्रेज भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए इतने चिंतित क्यों थे?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6.5 तिब्बत

हिमालय पर्वत श्रेणी भारत और चीन के बीच प्राकृतिक सीमा का कार्य करती है। हिमालय की ऊँची चोटियों में नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत आदि अनेक राज्य बसे हुए हैं। इनमें भारत की सीमा सुरक्षा की दृष्टि से तिब्बत सबसे महत्वपूर्ण है। तिब्बत को "तपस्वी का देश" (Hermit Kingdom) भी कहा जाता है। यह देश चारों ओर ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। इन चोटियों की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 10,000 फुट है। यहाँ आर्थिक संसाधनों की बहुत कमी है तथा यहाँ के लोग अलग-थलग रहना पसंद करते हैं। विदेशी खतरों से बचने के लिए इन्होंने चीनी संरक्षण का सहारा लिया जैसा कि तिब्बत को 1728 में प्रदान किया गया था। किंतु तिब्बत के ऊपर चीन की यह प्रभुता नाममात्र की थी तथा उन्नीसवीं शती में इसकी कोई व्यावहारिक मान्यता नहीं रह गई थी। तिब्बत युद्ध संबंधी गतिविधियों को कभी का त्याग चुका था और चीन सैन्य दृष्टि से दुर्बल था। अतः इन दोनों देशों से अंग्रेजों को कोई खतरा नहीं था। इस उपेक्षित भाग तिब्बत में अंग्रेजों की रुचि आरंभ में केवल व्यापारिक ही थी। वारेन हेस्टिंग्ज (Warren Hastings) ने इस क्षेत्र में तीव्र व्यापारिक रुचि दिखाई तथा दो व्यापारिक शिष्टमंडल भेजे, एक 1774 में, तथा दूसरा 1783 में। किंतु तिब्बत का शासक दलाई लामा अलगाववादी तथा संशयी प्रकृति का था। उसने ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक प्रस्तावों को ठुकरा दिया। अंग्रेजों की रुचि तिब्बत में धीरे-धीरे बढ़ती गई। इसके अनेक कारण थे इनमें से प्रमुख थे:

i) चीन की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। विदेशी शक्तियों द्वारा चीन में अपने अधिकार क्षेत्र स्थापित करने की होड़ लगी हुई थी। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन तथा रूस के लिए तिब्बत का सामरिक महत्व बहुत बढ़ गया।

ii) नेपाल, भूटान तथा सिक्किम पर अंग्रेजों का आधिपत्य होने के साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा तिब्बत की सीमा के बहुत समीप आ गई।

iii) जब रूसी सेनाएँ बढ़ते हुए पामीर तक जा पहुँची तो उत्तर की ओर भारत की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो गया।

iv) और अंत में, उन्नीसवीं शती में चाय तथा शॉल के ऊन में अंग्रेजों की रुचि बढ़ गई थी। व्यापारी सरकार पर इस बात के लिए जोर डालने लगे कि वह भूटान के माध्यम से तिब्बत के साथ नियमित व्यापारिक संबंध स्थापित करे।

चांचू राजवंश के पतन के साथ ही तिब्बत पर चीन का प्रभाव भी क्षीण हो गया। जब युवा दलाई लामा पर रीजेन्सी काउन्सिल का अधिकार नहीं रह गया तो वह चीनी प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास करने लगा। सच तो यह था कि यह प्रभाव नाममात्र को ही था। किंतु, अंग्रेज विशेष रूप से लार्ड कर्जन, यही समझते रहे कि दलाई लामा चीन से मुक्त होने को बैचेन है। ऐसी अफवाह चल पड़ी थी कि अग्वार दोरदशी नामक एक मंगोल व्यक्ति का जो कि रूसी नागरिक दलाईलामा का कृपा पात्र बना हुआ है ल्हासा (Lhasa) और पीटर्सबर्ग (Petersburg) के बीच, बहुत अधिक आना-जाना है। अंग्रेजों के लिए इस अज्ञात देश का आकर्षण बहुत प्रबल था, साथ ही ये रूस से भयभीत भी थे। व्यापार में विस्तार करने की इच्छा भी बलवती थी। ये सब बातें लार्ड कर्जन को सक्रिय बनाने के लिए पर्याप्त थीं। विशेष रूप से इसलिए क्योंकि वह जानता था कि तिब्बतियों के पास आधुनिक शस्त्रों का सामना करने के लिए धर्म-चक्रों के अतिरिक्त कुछ और नहीं है। लार्ड कर्जन ने तिब्बत को ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन लाने का संकल्प कर लिया।

यद्यपि इंग्लैंड की सरकार तिब्बत के मामलों में हस्तक्षेप करने के पक्ष में नहीं थी फिर भी लार्ड कर्जन ने कर्नल फ्रांसिस यंगहस्बंड को तिब्बत भेजने की आज्ञा प्राप्त कर ही ली। कर्नल यंगहस्बंड का तिब्बत अभियान सिक्किम होता हुआ अंततः 1904 को ल्हासा पहुँच गया। सात सौ तिब्बितियों को मौत के घाट उतारने के बाद उसने दलाई लामा को एक संधि स्वीकार करने पर बाध्य किया। इस संधि के अनुसार तिब्बत ब्रिटिश साम्राज्य का संरक्षित राज्य बनकर रह गया। इस संधि में अंग्रेजों को तिब्बत में व्यापार करने के लिए कुछ सुविधाएँ भी दी गई थीं। किंतु, रूस के भय का हौआ निर्मूल सिद्ध हुआ क्योंकि 1907 की संधि के द्वारा रूस ने तिब्बत पर अंग्रेजों की प्रभुता स्वीकार कर ली। वैसे पूर्वी एशिया में व्यस्त होने के कारण रूस इस स्थिति में नहीं था कि तिब्बत की ओर अधिक ध्यान दे पाता। असल में तिब्बत अभियान के पीछे अंग्रेजों की साम्राज्यवादी हवस ही क्रियाशील थी।

1911 की चीनी क्रांति के बाद दलाईलामा ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। किंतु चीन की नई सरकार तिब्बत को चीन से मिला लेने पर आमादा थी। तिब्बत की स्वाधीनता को स्वीकार करने के स्थान पर अंग्रेज सरकार ने मई 1913 में चीन और तिब्बत के प्रतिनिधियों को आमंत्रित करके शिमला में एक त्रिदलीय वार्ता का आयोजन किया। 13 अक्तूबर 1913 को यह वार्ता हुई तथा 1914 में दो समझौते किए गए। पहले समझौते के अनुसार अंग्रेजों ने पूर्वी क्षेत्र अथवा आंतरिक क्षेत्र पर चीन की प्रभुता स्वीकार कर ली। दूसरा, पश्चिमी क्षेत्र स्वायत्त घोषित किया गया। दूसरे समझौते के अनुसार तिब्बत और ब्रिटिश भारत के बीच सीमा रेखा खींचना तय हुआ। इस सीमा रेखा का नाम अंग्रेज प्रतिनिधि हैनरी मैकमोहन के नाम पर मैकमोहन रेखा ही पड़ गया।

6.6 नेपाल

भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत तथा तिब्बत के छोटे-छोटे राज्यों की श्रृंखला थी। जब इस क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हुआ तो ये राज्य अंग्रेजों के संपर्क में आए। साम्राज्य विस्तार की प्रक्रिया में ये राज्य भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ब्रिटेन के नियंत्रण में आ गए। ताकि वह तिब्बत या चीन के विरुद्ध भारत की अग्रिम चौकियों के रूप में कार्य करना था। पश्चिमी छोर पर जो पहला राज्य पड़ता था वह था हिन्दू गोरखा राज्य। गोरखाओं ने 1768 में काठमांडू की घाटी पर अधिकार कर लिया था और धीरे-धीरे वे अपने पूर्वी एवं पश्चिमी भागों को हड़पते गए। यहां तक कि कुमाऊँ, गढ़वाल तथा शिमला की पहाड़ियों पर भी उन्होंने अधिकार जमा लिया किंतु गोरखाओं की पराजय के बाद 1816 की संधि के अनुसार ये क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गए।

संधि हो जाने के पश्चात् अंग्रेजों ने नेपाली शासकों के साथ संबंध बनाए रखने में बड़ी चतुराई और कुशलता से काम लिया। वे नेपाल के शासकों को प्रभुसत्ता संपन्न का दर्जा देते थे तथा उन्हें योर मेजेस्टी कह कर संबोधित करते। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत की सुरक्षा के लिए अंग्रेज केवल हिमालय की ऊँची चोटियों पर ही निर्भर नहीं थे उनके लिए नेपाल, भारत, तिब्बत और चीन के मध्यवर्ती राज्य का काम करता था। अंग्रेजों के लिए सबसे संतोषजनक बात यह थी कि नेपाल ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध किसी भावना को समर्थन नहीं दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के साथ नेपाल के संबंध शांतिपूर्ण सहअस्तित्व एवं विश्वास के थे। दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति मैत्री का भाव रखते थे। 1857 के विद्रोह के समय नेपाल पूर्णरूपेण तटस्थ बना रहा और ब्रिटिश साम्राज्य ने बड़ी संख्या में गोरखों को भाड़े के सैनिकों के रूप में अपनी सेना में भरती किया। बिना किसी औपचारिक मित्रता संधि के नेपाल सरकार ने अपनी विदेश नीति को अंग्रेजों के हितों के अनुकूल ढाल लिया। उदाहरण के लिए यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि ब्रिटिश राजनयिक शिष्टमंडल के अतिरिक्त किसी अन्य शिष्टमंडल को नेपाल में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी।

बोध प्रश्न 3

1 निम्नलिखित कथनों में कौन से सही (√) या गलत (×) हैं :

i) चीन का तिब्बत पर दीर्घकाल तक नाममात्र का आधिपत्य रहा।

ii) तिब्बत के प्रति अंग्रेजों के इरादे साम्राज्यवादी नहीं थे।

iii) नेपाल भारत तथा तिब्बत या चीन के बीच मध्यवर्ती (mediatory) राज्य था।

iv) भारत की अंग्रेज सरकार तथा नेपाल के बीच कभी सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं रहे।

2 लगभग दस पंक्तियों में इस बात का विवेचन कीजिए कि तिब्बत में अंग्रेजों की रुचि किन कारणों से बढ़ी।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6.7 सिक्किम

नेपाल और भूटान के बीच एक छोटा-सा पहाड़ी राज्य है —सिक्किम। इस राज्य में तिब्बत जाने वाले दो दर्रे पड़ते थे। एक मार्ग कालिम्पोंग तथा जेलेप दर्रे से होकर चुम्बी घाटी को जाता था तथा दूसरा मार्ग उधर तिस्ता नदी के साथ-साथ केम्पास, त्सोंग तथा सिंगास्ती को जाता था। तिब्बत पर चीनी प्रभुत्व स्थापित होने से पूर्व सिक्किम राजनीतिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था क्योंकि यहाँ से होकर तिब्बत जाया जा सकता था। यहाँ की सभ्यता पर तिब्बती बौद्ध भिक्षुओं का प्रभाव था तथा यहाँ एक स्थानीय कुलीन वंश का शासन था। सिक्किम एक स्वतंत्र राज्य था। अठारहवीं शती के अंत तक गोरखाओं ने सिक्किम पर अस्थायी नियंत्रण स्थापित कर लिया था। किंतु अंग्रेजों ने सिक्किम की स्वतंत्रता को बहाल किया तथा 1861 में इसे ब्रिटिश संरक्षित राज्य घोषित कर दिया। दलाई लामा अंग्रेजों के इस कार्य से प्रसन्न नहीं था। 1890 में चीन ने सिक्किम पर ब्रिटिश अधिकार को मान्यता दे दी। अंग्रेजों ने सिक्किम संबंधी नीति अपने हितों की रक्षा के लिए बनाई थी।

6.8 भूटान

सिक्किम के पूर्वी भाग से लगा हुआ एक राज्य है — भूटान। भूटानी लोग गरीब थे और प्रायः मैदानी इलाकों में आकर लूटपाट मचाया करते थे। ऐसे ही एक अभियान में भूटानी लुटेरों ने कूचबिहार के राजा का अपहरण कर लिया। कूचबिहार अंग्रेजों के संरक्षण में था। अपहृत राजा को छुड़ाने के लिए वारेन हेस्टिंग्ज ने भूटान पर चढ़ाई कर दी। भूटान की पराजय हुई और ब्रिटिश साम्राज्य में एक छोटा सा भू-भाग और जुड़ गया। किंतु अब भी मौका पाकर, जब अंग्रेजों का ध्यान बँटा होता था, भूटानी लुटेरे लूटपाट करते रहते थे। वे तो अंग्रेज प्रतिनिधियों से दुर्व्यवहार करने से भी नहीं चुकते थे। इन गतिविधियों से क्रुद्ध होकर अंग्रेज सरकार ने दमन और प्रतिरोध की नीति अपनाई तथा भूटान पर दृढ़तापूर्वक अपनी सत्ता स्थापित कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि 1904-6 के यंगहस्बंड अभियान में भूटान ने अंग्रेजों का पूरा साथ दिया। अंततः सर चार्ल्सबेल के प्रयत्नों के फलस्वरूप पुनारवा में एक मित्रता संधि हुई जिसके अनुसार अंग्रेजों ने भूटान को स्वतंत्र संप्रभुता संपन्न राज्य मान लिया किंतु उसकी विदेश नीति अंग्रेजों के नियंत्रण में रही।

6.9 उत्तर पूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा)

भूटान और बर्मा के बीच के पहाड़ी क्षेत्र में भी पहाड़ी कबीले बसे हुए थे। ये कबीले हर तरह से अपने उत्तर पश्चिमी बंधुओं की भाँति ही थे, केवल जाति और धर्म में भिन्न थे और व्यावहारिक रूप से पूर्ण स्वतंत्र थे। ये लोग बड़े दुर्दांत और लड़ाके थे तथा अभावग्रस्त होने के कारण मैदानी इलाकों में लूटपाट किया करते थे। 1826 में जब असम को भारत में मिला लिया गया तो लूटपाट की ये घटनाएँ अंग्रेजों के लिए चिंता का विषय बन गईं। इस समस्या को सुलझाने के लिए अंग्रेजों ने उपहार

देने तथा संरक्षण प्रदान करने की नीति अपनाई। जब ब्रिटिश भारत की सीमा पर्वत श्रृंखलाओं तक पहुँच गई तो अंग्रेजों ने सुरक्षा चौकियों की श्रृंखला स्थापित की और तिब्बती सरकार को मैकमोहन सीमा रेखा मानने पर बाध्य किया।

भारत के सुदूर उत्तरपूर्व के प्रदेश में नागा जनजातियां रहती थीं। वहाँ भी सीमा खींचने की आवश्यकता थी। ये कबीले शीघ्र ही अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गए। किंतु दुर्गम पर्वत श्रृंखलाओं के कारण यह प्रदेश शेष भारत से कटा ही रहा। ईसाई मिशनरियों ने कुछ नागाओं को ईसाई बना लिया था तथा उस समय के उच्च वर्ग ने पाश्चात्य तौर तरीके अपना लिए थे।

एक अन्य पहाड़ी राज्य मणिपुर भी अंग्रेजों के लिए गंभीर समस्या बना हुआ था। 1826 में मणिपुर के शासक को अंग्रेजों ने महाराजा के रूप में मान्यता दे दी थी। 1886 में तत्कालीन महाराजा की मृत्यु के बाद मणिपुर में अनेक अंग्रेज अधिकारियों की हत्याएँ हो गई। परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने मणिपुर को संरक्षित राज्य घोषित कर दिया।

पूर्व में भारत का पड़ोसी देश था बर्मा। अठारहवीं शती के अंत तथा उन्नीसवीं के आरंभ में बर्मा साम्राज्य का निरंतर विस्तार होता रहा। चीन के आधिपत्य से मुक्त होकर बर्मा का साम्राज्य अपना विस्तार करने में व्यस्त था। उसने पूर्व में थाईलैंड तथा पश्चिम में मणिपुर और असम तक अपनी सीमाएँ बढ़ा ली थीं। अपनी इस विस्तारवादी नीति के कारण बर्मा को तीन बड़े युद्धों का सामना करना पड़ा। पहला युद्ध 1824-26 में, दूसरा 1852 में तथा अंतिम 1885 में हुआ। इन युद्धों के परिणामस्वरूप पूरे बर्मा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

बोध प्रश्न 4

1 निम्नलिखित कथनों में कौन से सही (√) हैं और कौन से (×) गलत:
   i) चीन ने सिक्किम पर अंग्रेजों के अधिकार को मान्यता दे दी थी।
   ii) भूटान ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति को कायम रखा।
   iii) ईसाई मिशनरियों ने अधिकांश नागाओं को ईसाई बना लिया था।
   iv) 1885 तक बर्मा ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन चुका था।

2 लगभग दस पंक्तियों में लिखिए कि उत्तर पूर्वी सीमांत एजेंसी (नेफा) में ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई नीति का क्या उद्देश्य था।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

6.10 सारांश

अब तक हमने जो विश्लेषण किया उसके मोटे तौर पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

1 ब्रिटिश भारत की विदेश नीति मुख्य रूप से इस तथ्य पर आधारित थी कि एशिया में रूस और चीन दो शक्तियाँ थीं और उस समय भारत की राजनीतिक गतिविधियों के निर्धारण में इन दोनों देशों के संबंधों का महत्वपूर्ण हाथ था। इस समय चीन की शक्ति पतनोन्मुख थी जबकि रूस मध्य एशिया में अपनी शक्ति का विस्तार कर रहा था। अपने साम्राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं प्राकृतिक सीमांत की खोज में ब्रिटिश शक्ति तेजी से उत्तर पूर्व की ओर बढ़ रही थी। उन्नीसवीं शती में ब्रिटिश भारत की विदेश नीति के निर्धारण में "रूसी खतरे" (Russian Peril) की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही।

2 भारत की विदेश नीति के निर्धारण में यहाँ की भौगोलिक स्थिति का भी हाथ रहा। भारत छोटी-छोटी रियासतों से घिरा हुआ था। इन रियासतों से तो भारत को कोई खतरा नहीं था किंतु सामरिक दृष्टि से ये इतनी दुर्बल थीं कि रूस जैसी विदेशी शक्तियों के मन में इन पर आक्रमण करने की बात सहज ही उठ सकती थी। उस स्थिति में भारत के लिए खतरा हो सकता था। इसके अतिरिक्त भारत के सीमांत पर लड़ाकू कबीले बसे हुए थे जिनके कारण उस क्षेत्र में अशांति बनी रहती थी इस कारण भारत के उत्तरी पश्चिमी एवं उत्तर-पूर्वी सीमांत को सुदृढ़ रक्षापंक्ति नहीं कहा जा सकता था।

3 अंग्रेजों की नीतियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने भारत में अपना राज सुदृढ़ करने के लिए राज्य प्रशासन को व्यवस्थित किया तथा इस बात की भी पूरी व्यवस्था की कि भारत पर कोई विदेशी आक्रमण न होने पाए।

इस सबके बावजूद यह ध्यान रखना चाहिए कि भारत में अंग्रेजों की विदेश नीति का एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वव्यापी हितों की रक्षा करना था। अगली इकाइयों में हम इस बात पर विचार करेंगे कि भारत के राष्ट्रवादी नेताओं ने इस नीति की आलोचना क्यों की।

6.11 शब्दावली

द्विध्रुवीकरण (Bipolarisation): दो समूहों अथवा गुटों को एक दूसरे के विरोध में लाने वाली प्रक्रिया।

व्यापारकेंद्र (Emporium): ऐसा केंद्र जहां विभिन्न स्थानों से वस्तुएं लाकर रखी और बेची जाती हैं।

विदेश नीति (Foreign Policy): किसी देश की वह नीति जिसके अनुसार वह अन्य देशों के साथ बाह्य मामलों में व्यवहार करता है। इसके अंतर्गत अन्य देशों के साथ राजनयिक, आर्थिक, सैन्य तथा सांस्कृतिक संबंध आते हैं। विदेश नीति देशों की आंतरिक नीति की ही अभिव्यक्ति होती है।

साम्राज्यवादी नीति (Imperialistic Policy): किसी देश की अन्य कमजोर देशों पर आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने की नीति।

विद्रोह (Insurgency): स्थापित सत्ताधिकार के विरुद्ध विप्लवात्मक कार्य। इस शब्द का प्रयोग प्रायः सत्ताधिकारपक्ष विरोध अथवा विप्लव के कार्यों को नाम देने के लिए करता है।

अलगाववादी (Isolationist): अलग-थलग रहने की नीति का पालन करने वाला व्यक्ति।

भाड़े के सैनिक (Mercenaries): पैसे के लिए लड़ने वाले भाड़े के सैनिक जो पैसा देने वाले के लिए लड़ते हैं — देश के लिए नहीं।

संरक्षित राज्य (Protectorate): ऐसा देश जो आंतरिक मामलों में तो स्वाधीन रहता है किंतु जिसकी विदेश नीति पर बाह्य शक्ति का नियंत्रण रहता है।

6.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) √ ii) × iii) × iv) √

2 देखिए उपभाग 6.2.4

बोध प्रश्न 2

1 i) × ii) √ iii) √ iv) √

2 देखिए भाग 6.3

बोध प्रश्न 3

1 i) √ ii) √ iii) √ iv) ×

2 देखिए भाग 6.5

बोध प्रश्न 4

1 i) √ ii) × iii) √ iv) √

2 देखिए भाग 6.9